प्राचार्य, पटना महाविद्यालय, पटना एवं अन्य

बनाम

कल्याण श्रीनिवास रमन

24 सितम्बर, 1965

[पी. बी. गजेन्द्रगडकर, मुख्य न्यायाधीश; के. एन. वांचू; एम. हिदायतुल्लाह; जे. सी. शाह तथा एस. एम. सीकरी, न्यायमूर्ति गण]

पटना विश्वविद्यालय अधिनियम, 1951 (1951 का 25), धारा 34(घ)—अधिनियम के अंतर्गत बनाए गए विनियम—विनियम 4 में प्रत्येक विषय में व्याख्यानों, मार्गदर्शन सत्रों एवं प्रायोगिक कक्षाओं में 75% उपस्थिति की आवश्यकता—क्या प्रतिशत प्रत्येक विषय में अलग-अलग लिया जाएगा या सभी विषयों को सम्मिलित रूप से।

उत्प्रेषण—उच्च न्यायालय द्वारा शैक्षणिक प्राधिकारियों के निर्णय में हस्तक्षेप कब किया जाना चाहिए।

उत्तरदाता, जो उस महाविद्यालय का छात्र था जिसके प्रथम अपीलकर्ता प्राचार्य थे, को पटना विश्वविद्यालय की बी.ए. भाग-I परीक्षा में बैठने के लिए अयोग्य घोषित किया गया, क्योंकि भूगोल के प्रायोगिक विषय में उसकी उपस्थिति केवल 24% थी, जबकि विश्वविद्यालय की अकादमिक परिषद द्वारा बनाए गए विनियम 4 के अंतर्गत अपेक्षित प्रतिशत 75% था। उसने संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत एक रिट याचिका दायर की और उच्च न्यायालय से अंतरिम आदेश प्राप्त किया, जिसमें प्राधिकारियों को उसे परीक्षा में बैठने की अनुमति देने का निर्देश दिया गया। गुण-दोष के आधार पर उच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि विनियम 4 के अनुसार किसी विशेष विषय में व्याख्यानों, मार्गदर्शन सत्रों और प्रायोगिक कक्षाओं में उपस्थिति का प्रतिशत संयुक्त रूप से लिया जाना चाहिए, अलग-अलग नहीं; और इस प्रकार भूगोल विषय में उत्तरदाता की कुल उपस्थिति 66% थी। कमी 15% से कम होने के कारण विनियम 5 के अंतर्गत कुलपति के लिए इसे क्षमा करना संभव था। अतः उच्च न्यायालय ने *उत्प्रेषण* की रिट जारी कर प्रथम अपीलकर्ता के उस आदेश को निरस्त कर दिया, जिसमें उत्तरदाता को परीक्षा में बैठने के लिए अयोग्य घोषित किया गया था, और प्राधिकारियों को यह निर्देश दिया कि वे उपस्थिति में कमी को क्षमा किए जाने के प्रश्न को

कुलपति के समक्ष रखें तथा यदि वह क्षमा कर दी जाए तो उत्तरदाता का परिणाम घोषित किया जाए। इस आदेश के विरुद्ध अपीलकर्ता विशेष अनुमति द्वारा इस न्यायालय के समक्ष आए।

अभिनिर्धारित: (i) व्याख्यानों, मार्गदर्शन सत्रों और प्रायोगिक कक्षाओं में 75% उपस्थिति की आवश्यकता को संयुक्त रूप से पढ़ा जाना चाहिए, न कि उन्हें अलग-अलग मानकर। अन्यथा कुछ विषयों में छात्र केवल व्याख्यानों में उपस्थित रहकर और मार्गदर्शन सत्रों में बिल्कुल उपस्थित न होकर भी आवश्यक प्रतिशत पूरा कर सकता है। यह विनियम बनाते समय आशय नहीं हो सकता था और यह आधुनिक शिक्षा की उस पद्धति के अनुरूप भी नहीं होगा, जिसमें मार्गदर्शन सत्रों और प्रायोगिक कार्यों पर विशेष बल दिया जाता है। [980 जी; 981 एफ]

(ii) यह सत्य है कि विनियम 4 की दूसरी उपधारा यह अपेक्षा करती है कि संबंधित प्रतिशत सत्र के दौरान प्रदान किए गए व्याख्यानों, मार्गदर्शन सत्रों और प्रायोगिक कक्षाओं की कुल संख्या के आधार पर निकाला जाए; किंतु यह प्रावधान मात्र मुख्य प्रावधान का अनुगामी है और चूँकि विनियम 4 के अंतर्गत 75% उपस्थिति की आवश्यकता व्याख्यानों, मार्गदर्शन सत्रों और/या प्रायोगिक कक्षाओं के संबंध में अलग-अलग रूप से निर्धारित नहीं की गई है, इसलिए दूसरी उपधारा को उसी के अनुरूप पढ़ा जाना चाहिए। इसका तात्पर्य केवल यह है कि जब उपस्थिति का प्रतिशत व्याख्यानों, मार्गदर्शन सत्रों और प्रायोगिक कक्षाओं के संदर्भ में निर्धारित किया जाए, तो जिस संख्या को ध्यान में रखा जाएगा वह सत्र के दौरान प्रदान किए गए व्याख्यानों, या आयोजित किए गए मार्गदर्शन सत्रों अथवा प्रायोगिक कक्षाओं की कुल संख्या होगी। [981 जी, एच]

(iii) याचिकाकर्ता ने अपनी याचिका संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत केवल परीक्षा प्रारंभ होने से एक दिन पूर्व दायर की, जबकि वह इसे पहले भी दायर कर सकता था। इन परिस्थितियों में यह बेहतर होता कि उच्च न्यायालय ने अंतरिम आदेश पारित न किए होते। गुण-दोष के आधार पर भी, जहाँ प्रश्न विश्वविद्यालय की अकादमिक परिषद द्वारा बनाए गए किसी विनियम की व्याख्या से संबंधित हो, वहाँ उच्च न्यायालय को सामान्यतः उत्प्रेषण की रिट जारी करने में संकोच करना चाहिए, विशेषकर तब जब यह स्पष्ट हो कि उक्त विनियम दो प्रकार की व्याख्याओं के योग्य है और सामान्यतः यह उपयुक्त नहीं होगा कि शैक्षणिक प्राधिकारियों के निर्णय को केवल इस आधार पर पलट दिया जाए कि संबंधित

विनियमों पर उनके द्वारा की गई व्याख्या उच्च न्यायालय को उस वैकल्पिक व्याख्या से कम युक्तिसंगत प्रतीत होती है, जिसे वह स्वीकार करना चाहता है। [985 बी–एफ]

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: 1965 की दीवानी अपील संख्या 743

पटना उच्च न्यायालय द्वारा दीवानी रिट क्षेत्राधिकार वाद संख्या 345, सन् 1965 में 14 मई, 1965 को पारित निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध विशेष अनुमति द्वारा अपील।

सी. के. दफ्तरी, महान्यायवादी; आर. एन. सिन्हा तथा एस. पी. वर्मा—अपीलकर्ताओं की ओर से।

बसुदेव प्रसाद, के. राजेन्द्र चौधरी तथा के. आर. चौधरी—उत्तरदाता की ओर से।

न्यायालय का निर्णय **गजेन्द्रगडकर, मुख्य न्यायाधीश** द्वारा दिया गया—

यह अपील पटना विश्वविद्यालय की अकादमिक परिषद द्वारा अपीलकर्ता संख्या 3 के अंतर्गत बनाए गए विनियम 4 की व्याख्या से संबंधित एक संक्षिप्त प्रश्न उठाती है, जो पटना विश्वविद्यालय अधिनियम, 1951 (बिहार अधिनियम XXV, सन् 1951) की धारा 34(घ) के अधीन बनाया गया था। उत्तरदाता कल्याण श्रीनिवास रमन वह छात्र था, जिसने पटना महाविद्यालय द्वारा विश्वविद्यालय की बी.ए. भाग-I परीक्षा में छात्रों को भेजने के लिए आयोजित परीक्षा में भाग लिया और उसे उत्तीर्ण किया। उसका नाम उन अभ्यर्थियों की सूची में प्रदर्शित किया गया था, जो उक्त विश्वविद्यालय परीक्षा, 1965 में सम्मिलित होने के पात्र थे, और यह सूची महाविद्यालय प्राधिकारियों द्वारा 26 मार्च, 1965 को प्रकाशित की गई थी। किंतु 29 मार्च, 1965 को अपीलकर्ता संख्या 1, पटना महाविद्यालय के प्राचार्य, द्वारा सूचना-पट्ट पर एक सूचना प्रदर्शित की गई, जिसमें यह दर्शाया गया कि उत्तरदाता उक्त विश्वविद्यालय परीक्षा, 1965 में भेजे जाने के लिए पात्र नहीं था और यह कि उसका अनुक्रमांक पहले प्रकाशित सूची में केवल एक लिपिकीय त्रुटि के कारण सम्मिलित हो गया था। इस सूचना से आहत होकर उत्तरदाता ने 18 अप्रैल, 1965 (रविवार) को पटना उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका दायर की और उसे अपने निवास पर माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत किया। इस रिट याचिका द्वारा उत्तरदाता ने *परमादेश* की रिट या कोई अन्य उपयुक्त आदेश अथवा निर्देश प्रार्थित किया, जिससे 29 मार्च, 1965 को अपीलकर्ता संख्या 1 द्वारा जारी सूचना को निरस्त एवं रद्द किया जा सके; उसने आगे अपीलकर्ता संख्या 1; पटना विश्वविद्यालय के कुलपति, अपीलकर्ता संख्या 2; तथा अपीलकर्ता संख्या 3 के विरुद्ध

एक उपयुक्त आदेश या निर्देश की भी प्रार्थना की, ताकि उसे उक्त विश्वविद्यालय परीक्षा में सम्मिलित होने की अनुमति दी जाए।

विद्वान मुख्य न्यायाधीश ने रिट याचिका प्राप्त की और यह निर्देश दिया कि उक्त याचिका की सुनवाई उसी उच्च न्यायालय के दो माननीय न्यायाधीशों की खंडपीठ द्वारा रात्रि में की जाए। तदनुसार, खंडपीठ ने दो माननीय न्यायाधीशों में से एक के निवास पर उक्त रिट याचिका की सुनवाई की और एक अंतरिम आदेश पारित करते हुए रिट याचिका को स्वीकार किया तथा यह निर्देश दिया कि याचिका के अंतिम निस्तारण तक उत्तरदाता को उक्त परीक्षा में सम्मिलित होने की अनुमति दी जाए, किंतु उसका परिणाम उसके आवेदन के निस्तारण तक प्रकाशित न किया जाए। यह प्रतीत होता है कि जब रिट याचिका विद्वान मुख्य न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत की गई थी, तब वह शपथबद्ध नहीं थी और न ही कोई वकालतनामा दायर किया गया था; बाद में उसे खंडपीठ द्वारा स्वीकार किया गया। अंतरिम आदेश पारित करने के पश्चात, खंडपीठ ने यह निर्देश दिया कि उत्तरदाता अगले दिन शपथपत्र शपथबद्ध कराए और वकालतनामा दाखिल करे।

उक्त अंतरिम आदेश के पालन में, अपीलकर्ता संख्या 1 ने उत्तरदाता का आवेदन अपीलकर्ता संख्या 3 को अग्रेषित किया, यद्यपि उसने यह स्पष्ट कर दिया कि उत्तरदाता ने पर्याप्त संख्या में प्रायोगिक कक्षाओं में उपस्थिति नहीं दी थी और उसके प्रायोगिक कार्य का अभिलेख संतोषजनक नहीं था, और इस प्रकार वह संबंधित विनियमों की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता था। इसके परिणामस्वरूप, उत्तरदाता को उक्त परीक्षा में सम्मिलित होने की अनुमति दे दी गई।

इसके पश्चात अपीलकर्ता उच्च न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए और उत्तरदाता के दावे का विरोध किया। उन्होंने यह आग्रह किया कि संबंधित विनियम उत्तरदाता के इस तर्क का समर्थन नहीं करते कि वह उक्त परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए पात्र था, और उन्होंने यह भी प्रतिपादित किया कि अपीलकर्ता संख्या 1 द्वारा जारी आक्षेपित सूचना पूर्णतः उचित थी।

रिट याचिका की सुनवाई करने वाले विद्वान न्यायाधीशों ने, तथापि, संबंधित विनियमों की व्याख्या के संबंध में अपीलकर्ताओं द्वारा उठाई गई दलीलों को अस्वीकार कर दिया और यह निर्णय दिया कि उक्त विनियमों के अंतर्गत अपीलकर्ता संख्या 2 पर यह अनिवार्य दायित्व था कि वह इस प्रश्न पर विचार करे कि भूगोल के प्रायोगिक विषय में उत्तरदाता की

उपस्थिति में हुई कमी को क्षमा किया जाना चाहिए या नहीं। इसी कारण उच्च न्यायालय ने आक्षेपित सूचना को निरस्त करने के लिए *उत्प्रेषण* की प्रकृति की रिट जारी करने का निर्देश दिया, तथा अपीलकर्ताओं को यह आदेश देने के लिए *परमादेश* की प्रकृति की रिट जारी करने का निर्देश दिया कि वे उक्त विनियम पर उच्च न्यायालय द्वारा की गई व्याख्या के आलोक में विनियम 5 के अनुसार कार्य करें। उच्च न्यायालय ने यह भी आदेश दिया कि यदि अपीलकर्ता संख्या 2 द्वारा उत्तरदाता की उपस्थिति में हुई कमी को क्षमा कर दिया जाता है, तो न्यायालय के अंतरिम आदेश के अधीन दी गई परीक्षा में उत्तरदाता का परिणाम प्रकाशित किया जाएगा; अन्यथा उक्त परीक्षा में उसकी उपस्थिति को उपेक्षित (अमान्य) माना जाएगा। इसी आदेश के विरुद्ध अपीलकर्ता विशेष अनुमति द्वारा इस न्यायालय के समक्ष आए हैं; और इस प्रकार वर्तमान अपील में हमारे निर्णय के लिए जो मुख्य प्रश्न उत्पन्न होता है, वह यह है कि क्या उच्च न्यायालय ने विनियम 4 की सही व्याख्या की है।

संबंधित तथ्य विवादित नहीं हैं। भूगोल विषय में उत्तरदाता ने 93 में से 73 व्याख्यानों में, 20 में से 15 मार्गदर्शन सत्रों में तथा 25 में से 6 प्रायोगिक कक्षाओं में उपस्थिति दी। उसकी उपस्थिति का प्रतिशत अलग-अलग रूप से क्रमशः 75, 75 और 24 था। यदि उक्त प्रतिशतों को संयुक्त रूप से लिया जाए, तो यह 66 बनता है। उत्तरदाता का मामला यह था कि विनियम 4 के अंतर्गत उसे व्याख्यानों, मार्गदर्शन सत्रों और प्रायोगिक कक्षाओं में संयुक्त रूप से कम से कम 75 प्रतिशत उपस्थिति बनाए रखना आवश्यक है, और यह कि 75 प्रतिशत उपस्थिति की शर्त को व्याख्यानों, मार्गदर्शन सत्रों और प्रायोगिक कक्षाओं के संदर्भ में अलग-अलग रूप से पूरा किया जाना आवश्यक नहीं है। दूसरी ओर, अपीलकर्ताओं का तर्क था कि 75 प्रतिशत उपस्थिति की शर्त उम्मीदवार द्वारा व्याख्यानों, मार्गदर्शन सत्रों और प्रायोगिक कक्षाओं के संबंध में अलग-अलग रूप से पूरी की जानी चाहिए, न कि सामूहिक रूप से; और जब तक यह शर्त पूरी नहीं होती, छात्र परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए पात्र नहीं होता। इस पर उत्तरदाता की ओर से यह भी कहा गया कि उपस्थिति में कमी को संबंधित विनियमों के अंतर्गत क्षमा किया जा सकता है और उस स्थिति में छात्र को परीक्षा में बैठने की अनुमति दी जा सकती है। यह निर्विवाद है कि यदि अपीलकर्ताओं द्वारा प्रतिपादित व्याख्या स्वीकार की जाती है, तो अपीलकर्ता संख्या 1 द्वारा जारी सूचना वैध होगी; और दूसरी ओर, यदि उत्तरदाता द्वारा प्रतिपादित व्याख्या को स्वीकार किया जाता है, तो उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को गंभीरता से चुनौती नहीं दी जा सकती, क्योंकि उत्तरदाता द्वारा सुझाई गई और उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार की गई व्याख्या

के अनुसार, उपस्थिति में हुई कमी—जो सिद्ध है—को कुलपति द्वारा, यदि वह इसे न्यायसंगत और उचित समझे, क्षमा किया जा सकता था; और यह भी निर्विवाद है कि उत्तरदाता की उपस्थिति में कमी को क्षमा किए जाने के प्रश्न को कुलपति के समक्ष संदर्भित नहीं किया गया था और न ही उसने इस प्रश्न पर यह निर्णय दिया था कि ऐसी कमी को क्षमा किया जाए या नहीं।

अतः अब हम विनियम 4 की व्याख्या करने के लिए आगे बढ़ते हैं। अपीलकर्ता संख्या 3 की अकादमिक परिषद वह प्राधिकारी है, जिसकी शक्तियाँ और कर्तव्य पटना विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा 22 द्वारा परिभाषित किए गए हैं; इनमें अध्यापन और शिक्षा के मानकों के पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण का दायित्व भी सम्मिलित है। उक्त परिषद को धारा 34 के अंतर्गत यह अधिकार प्रदान किया गया है कि वह उन शर्तों के संबंध में विनियम बनाए, जिनके अधीन किसी छात्र को डिग्री या डिप्लोमा पाठ्यक्रम में प्रवेश दिया जाएगा और विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में सम्मिलित होने तथा डिग्रियाँ और डिप्लोमा प्राप्त करने के लिए पात्रता निर्धारित की जाएगी। इन्हीं शक्तियों के प्रयोग में संबंधित विनियम बनाए गए हैं। ये विनियम 23 जनवरी, 1961 से प्रवृत्त हुए।

विनियम 1 व्याख्यानों, मार्गदर्शन सत्रों शिक्षण तथा प्रायोगिक कार्य से संबंधित है। यह प्रावधान करता है कि कोई महाविद्यालय, विश्वविद्यालय विभाग अथवा संस्थान, अकादमिक परिषद द्वारा समय-समय पर निर्धारित किए जाने वाले न्यूनतम व्याख्यानों तथा उतनी ही अवधियों के मार्गदर्शन सत्रों शिक्षण और प्रायोगिक कार्य की व्यवस्था करेगा, जिनमें महाविद्यालय, विश्वविद्यालय विभाग अथवा संस्थान में प्रवेश प्राप्त छात्रों को भाग लेना होगा। विनियम 1 के उपविधान (1)(घ) में यह निर्धारित किया गया है कि कला, विज्ञान और वाणिज्य संकायों के किसी भी ऐसे विषय में, जिसमें प्रायोगिक परीक्षा निर्धारित की गई है, पूर्व-विश्वविद्यालय कक्षा में कम से कम एक प्रायोगिक कक्षा, जिसकी अवधि दो अवधियों के बराबर हो, अनिवार्य रूप से होगी। बी.ए. और बी.एससी. परीक्षाओं के लिए, जिनमें प्रायोगिक परीक्षा निर्धारित है, प्रत्येक वर्ष में दो प्रायोगिक कक्षाएँ होंगी, जिनमें से प्रत्येक की अवधि दो अवधियों के बराबर होगी। विनियम 4 के उपविधान (1)(क) और (घ) में दिए गए अपवादों को छोड़कर, जिन विषयों में प्रायोगिक कार्य निर्धारित है, सभी संकायों में प्रत्येक छात्र को अकादमिक परिषद द्वारा निर्धारित प्रायोगिक कार्य करना अनिवार्य होगा, और यह कार्य नियमित रूप से तथा उचित पर्यवेक्षण में किया जाना चाहिए। प्रत्येक विषय के लिए व्याख्यानों की संख्या और प्रायोगिक कार्य के घंटों की संख्या, संबंधित संकाय की संस्तुतियों

पर विचार करने के पश्चात, अकादमिक परिषद द्वारा निर्धारित की जाएगी। यह विनियम स्पष्ट रूप से यह दर्शाता है कि अकादमिक परिषद व्याख्यानों के साथ-साथ प्रायोगिक कार्य और मार्गदर्शन सत्रों को भी पर्याप्त महत्व देती है, और यह अपेक्षा करती है कि छात्र न केवल व्याख्यानों में उपस्थित हो, बल्कि प्रायोगिक कार्य करे और मार्गदर्शन सत्रों में भी भाग ले।

वर्तमान अपील में जिसकी व्याख्या की जानी है, वह विनियम संख्या 4 इस प्रकार है —

> "प्रत्येक अभ्यर्थी, जिसे किसी महाविद्यालय या विश्वविद्यालय विभाग द्वारा किसी विश्वविद्यालय परीक्षा में प्रस्तुत किया गया हो, को इन विनियमों द्वारा निर्धारित नियमित पाठ्यक्रम पूर्ण करना अनिवार्य होगा, प्रत्येक उस विषय में जिसे वह परीक्षा के लिए प्रस्तुत करता है। किसी भी विषय में किसी छात्र को तब तक नियमित पाठ्यक्रम पूर्ण किया हुआ नहीं माना जाएगा, जब तक कि उसने उस विषय में प्रदान किए गए या उपलब्ध कराए गए व्याख्यानों, मार्गदर्शन सत्रों और/या प्रायोगिक कक्षाओं में—जैसा कि मामला हो—कम से कम पचहत्तर प्रतिशत उपस्थिति एक या अधिक महाविद्यालयों या विश्वविद्यालय विभागों में नहीं दी हो, और उसने पाठ्यक्रम के उस भाग पर समुचित ध्यान नहीं दिया हो, जिसमें मार्गदर्शन सत्र शिक्षण अथवा प्रायोगिक कार्य सम्मिलित है।
>
> उपर्युक्त निर्दिष्ट प्रतिशत की गणना सत्र के दौरान प्रदान किए गए या उपलब्ध कराए गए व्याख्यानों, मार्गदर्शन सत्रों तथा प्रायोगिक कक्षाओं की कुल संख्या के आधार पर की जाएगी।"

विनियम संख्या 5 उपस्थिति में कमी को क्षमा किए जाने के प्रश्न से संबंधित है; यह इस प्रकार है—

> "गंभीर बीमारी या अन्य अपरिहार्य परिस्थितियों में, व्याख्यानों, मार्गदर्शन सत्रों और प्रायोगिक कक्षाओं में उपस्थिति की कमी को पंद्रह प्रतिशत तक क्षमा किया जा सकता है।
>
> पाँच प्रतिशत तक की कमी को क्षुद्र माना जाएगा और उपयुक्त परिस्थितियों में, किसी महाविद्यालय के प्राचार्य या विश्वविद्यालय विभाग के अध्यक्ष या संबंधित संस्थान के निदेशक अथवा प्रधान द्वारा क्षमा किया जा सकता है।

पाँच प्रतिशत से अधिक किंतु पंद्रह प्रतिशत से अधिक नहीं की कमी पर विचार किया जाएगा और उपयुक्त परिस्थितियों में कुलपति द्वारा क्षमा किया जा सकता है।"

जिस अंतिम विनियम की ओर संदर्भ आवश्यक है, वह विनियम संख्या 7 है; यह इस प्रकार है—

"प्रत्येक अभ्यर्थी को प्रत्येक विश्वविद्यालय परीक्षा के लिए संबंधित महाविद्यालय के प्राचार्य, विश्वविद्यालय विभाग के अध्यक्ष या संबंधित संस्थान के प्रधान से एक प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करना होगा, जिसमें (क) उत्तम आचरण, (ख) नियमित पाठ्यक्रम की पूर्णता, (ग) व्याख्यानों, मार्गदर्शन सत्रों तथा प्रायोगिक कक्षाओं में उपस्थिति संबंधी निर्धारित आवश्यकताओं की पूर्ति, और (घ) मार्गदर्शन सत्र एवं/या प्रायोगिक कार्य का संतोषजनक अभिलेख—इन बातों का उल्लेख हो।"

विनियम 4 पर विचार करते समय दो व्यापक पहलुओं को ध्यान में रखना आवश्यक है। पहला पहलू यह है कि सभी सभ्य देशों में शिक्षा की आधुनिक पद्धति, व्याख्यानों में उपस्थिति के अतिरिक्त, छात्रों द्वारा किए गए मार्गदर्शन सत्रों तथा प्रायोगिक कार्य को अत्यधिक महत्व प्रदान करती है। आधुनिक समय में यह प्रवृत्ति रही है कि छात्रों को शिक्षक के साथ प्रत्यक्ष एवं व्यक्तिगत संपर्क में लाया जाए, ताकि शिक्षक यथासंभव प्रत्येक छात्र का व्यक्तिगत रूप से मार्गदर्शन एवं प्रशिक्षण कर सकें। उस उद्देश्य के लिए छात्रों के छोटे-छोटे समूह बनाए जाते हैं, जिन्हें विभिन्न विषयों के लिए अलग-अलग शिक्षक के अधीन रखा जाता है। प्रायोगिक कार्यों का महत्व भी अब व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है और शिक्षा अब केवल व्याख्यानों पर निर्भर नहीं रही है, जैसा कि हमारे देश में पहले किसी समय हुआ करता था। दूसरा पहलू, जिसे अप्रासंगिक नहीं माना जा सकता, यह है कि जब से वर्तमान विनियम 1961 में लागू हुए हैं, अपीलकर्ता सं. 3 तथा उसके अधिकार-क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले महाविद्यालयों ने विनियम 4 की व्याख्या उसी प्रकार निरंतर की है, जैसा कि अपीलकर्ता सं. 3 द्वारा सुझाया गया है। यह, निस्संदेह, सत्य है कि जिन दो पहलुओं का हमने अभी उल्लेख किया है, वे विनियम की व्याख्या को वस्तुतः नियंत्रित नहीं कर सकते; वह अनिवार्यतः स्वयं विनियम में प्रयुक्त शब्दों पर निर्भर करेगी; किंतु शब्दों की व्याख्या करते समय इन दोनों पहलुओं को अप्रासंगिक नहीं माना जा सकता।

अपीलकर्ताओं का तर्क है कि उच्च न्यायालय ने यह मानकर त्रुटि की कि लगभग

75% उपस्थिति की आवश्यकता को व्याख्यानों, मार्गदर्शन सत्रों तथा/अथवा प्रायोगिक कार्यों को एक साथ लेकर सामूहिक रूप से पूरा किया जाना चाहिए। उनका कहना है कि यह आवश्यकता व्याख्यानों, मार्गदर्शन सत्रों तथा/अथवा प्रायोगिक कार्यों पर अलग-अलग रूप से लागू होती है। यह स्पष्ट है कि विनियम में (और/या) शब्दों का प्रयोग इसलिए किया गया है क्योंकि कुछ विषयों में मार्गदर्शन सत्रों और प्रायोगिक कार्य दोनों निर्धारित होते हैं, जबकि कुछ अन्य विषयों में केवल मार्गदर्शन सत्रों या केवल प्रायोगिक कार्य निर्धारित होते हैं; अतः "और/या" शब्दों का प्रभाव यह है कि जहाँ मार्गदर्शन सत्रों और प्रायोगिक कार्य दोनों निर्धारित हों, वहाँ 75% उपस्थिति की शर्त दोनों के संदर्भ में पूरी की जानी चाहिए; और जहाँ केवल मार्गदर्शन सत्रों या केवल प्रायोगिक कार्य निर्धारित हों, वहाँ उक्त शर्त उसी के संदर्भ में पूरी की जानी चाहिए—चाहे वह मार्गदर्शन सत्रों हों या प्रायोगिक कार्य—जो भी उस विषय में निर्धारित किए गए हों। उच्च न्यायालय ने निस्संदेह यह स्पष्ट निष्कर्ष निकाला है कि इस विनियम में प्रयुक्त शब्द केवल एक ही व्याख्या को स्वीकार करते हैं, और वह यह कि 75% उपस्थिति की आवश्यकता का मूल्यांकन व्याख्यानों, मार्गदर्शन सत्रों तथा/अथवा प्रायोगिक कार्यों को एक साथ लेकर किया जाना चाहिए। हम इससे सहमत नहीं हो सकते। हमें प्रतीत होता है कि संदर्भ में इसे विभाज्य रूप में पढ़ना अधिक तर्कसंगत है; और इसलिए छात्र को यह शर्त व्याख्यानों, मार्गदर्शन सत्रों तथा/अथवा प्रायोगिक कार्यों के संदर्भ में, जैसा कि मामला हो, अलग-अलग रूप से पूरी करनी होगी।

विनियम 4 की व्याख्या करते समय हमें इस तथ्य को ध्यान में रखना होगा कि विनियम के अंतिम भाग में यह अपेक्षा की गई है कि छात्र ने पाठ्यक्रम के उस भाग पर समुचित ध्यान दिया हो जो मार्गदर्शन सत्रों शिक्षण या प्रायोगिक कार्य से संबंधित है; और यह अपेक्षा स्वाभाविक रूप से यह मानकर चलती है कि छात्र को कुछ प्रायोगिक कार्य करना होगा तथा उसे मार्गदर्शन सत्रों शिक्षण प्राप्त करना होगा।

विनियम 7 की आवश्यकता भी इस तथ्य पर बल देती है कि प्रत्येक छात्र, जिसे विनियम 4 के अनुसार निर्धारित नियमित पाठ्यक्रम पूरा किया हुआ कहा जा सकता है, उसे व्याख्यानों, मार्गदर्शन सत्रों तथा प्रायोगिक कार्यों में उपस्थिति की निर्धारित शर्त पूरी करनी होगी और मार्गदर्शन सत्रों तथा/अथवा प्रायोगिक कार्य का संतोषजनक अभिलेख प्रस्तुत करना होगा। विनियम 7(घ), जिसका हमने पहले ही उल्लेख किया है, ठीक उसी प्रकार, जैसा कि विनियम 4 के अंतिम भाग में है, इस बात पर बल देता है कि प्रत्येक छात्र को, जैसा भी मामला हो, मार्गदर्शन सत्र तथा/अथवा प्रायोगिक कार्य करना होगा। दूसरे शब्दों में, जहाँ

मार्गदर्शन सत्रों और प्रायोगिक कार्य दोनों निर्धारित हों, वहाँ छात्र को न केवल मार्गदर्शन सत्रों और प्रायोगिक कार्य करना होगा, बल्कि उस संबंध में संतोषजनक अभिलेख भी रखना होगा। जहाँ केवल मार्गदर्शन सत्रों या केवल प्रायोगिक कार्य निर्धारित हों, वहाँ भी इसी प्रकार की शर्त पूरी की जानी होगी।

इस दृष्टिकोण को अपनाने पर, उच्च न्यायालय द्वारा इस निष्कर्ष तक पहुँचना कि लगभग 75 प्रतिशत उपस्थिति की आवश्यकता को सामूहिक रूप से लिया जाना चाहिए, कुछ कठिन प्रतीत होता है। यह स्पष्ट है कि यदि उक्त आवश्यकता को सामूहिक रूप से पढ़ा जाए, तो छात्र किसी एक भी प्रायोगिक या मार्गदर्शन सत्रों में भाग लिए बिना, केवल व्याख्यानों में उपस्थिति के आधार पर, नियमित पाठ्यक्रम पूरा करने का दावा कर सकता है। उदाहरण के लिए, अंग्रेज़ी, इतिहास या राजनीतिक विज्ञान जैसे विषयों का मामला लें, जिस समूह में उत्तरदाता अध्ययन कर रहा था। श्री बसुदेव प्रसाद द्वारा इस बात से इनकार नहीं किया गया है कि इन विषयों में सैद्धांतिक रूप से छात्र के लिए यह संभव होगा कि वह अधिकतम संख्या में व्याख्यानों में तो उपस्थित हो, किंतु कोई भी मार्गदर्शन सत्रों न करे। दूसरे शब्दों में, उच्च न्यायालय द्वारा विनियम 4 की की गई व्याख्या इस अव्यावहारिक परिणाम तक ले जाती है कि केवल व्याख्यानों में उपस्थिति, किसी विशेष मामले में, छात्र को परीक्षा में बैठने का अधिकारी बना सकती है, भले ही उसने कोई भी मार्गदर्शन सत्रों न किया हो। हमारे मत में, यह विनियम का उद्देश्य नहीं हो सकता था। यह सही है कि विनियम 4 की दूसरी उपधारा यह अपेक्षा करती है कि संबंधित प्रतिशत की गणना सत्र के दौरान प्रदान किए गए या संपन्न कराए गए व्याख्यानों, मार्गदर्शन सत्रों तथा प्रायोगिक कार्यों की कुल संख्या के आधार पर की जाएगी; किंतु यह उपधारा मुख्य प्रावधान का केवल एक अनुगामी है, जिसके अंतर्गत 75 प्रतिशत उपस्थिति की शर्त व्याख्यानों, मार्गदर्शन सत्रों तथा/अथवा प्रायोगिक कार्यों के संदर्भ में अलग-अलग रूप से निर्धारित की गई है, और इसलिए इस दूसरी उपधारा को उसी के अनुरूप पढ़ा जाना चाहिए। इस प्रकार पढ़ने पर, इसका अर्थ केवल यह है कि जब प्रतिशत की गणना व्याख्यानों, मार्गदर्शन सत्रों तथा प्रायोगिक कार्यों के संदर्भ में की जाती है, तो उस स्थिति में संबंधित सत्र के दौरान दिए गए व्याख्यानों की कुल संख्या, अथवा आयोजित किए गए मार्गदर्शन सत्रों और प्रायोगिक कार्यों की कुल संख्या को ध्यान में रखा जाना चाहिए। हमने उच्च न्यायालय द्वारा अपने निष्कर्ष के समर्थन में दिए गए कारणों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है, किंतु हम इस बात से संतुष्ट नहीं हैं कि वे कारण उस व्याख्या को उचित ठहराते हैं, जो उच्च न्यायालय ने विनियम 4 में प्रयुक्त मुख्य (प्रासंगिक) शब्दों

पर की है।

उच्च न्यायालय से प्रतीत होता है कि यह दृष्टिकोण उसने अपनाया है कि विनियम 4 के प्रभाव के संबंध में उसका निष्कर्ष 1961 में प्रतिस्थापित किए गए पुराने विनियम द्वारा समर्थित है। वह पुराना विनियम इस प्रकार था—

> "1. किसी विश्वविद्यालय परीक्षा में प्रस्तुत किए जाने वाले किसी महाविद्यालय या विश्वविद्यालय विभाग को उस विषय को ग्रहण करने वाले छात्रों के लिए, समय-समय पर अकादमिक परिषद द्वारा निर्धारित किए जाने के अनुसार, कम से कम इतनी संख्या में व्याख्यानों तथा कम से कम इतने अवधियों के मार्गदर्शन सत्रों शिक्षण और प्रायोगिक कार्य की व्यवस्था करनी होगी, बशर्ते कि—
>
> ** ** ** **
>
> ** ** ** **
>
> (7) किसी भी संकाय में किसी भी विश्वविद्यालय परीक्षा में बैठने के लिए अर्ह होने हेतु, अभ्यर्थी को—
>
> (i) उसके द्वारा उक्त विश्वविद्यालय परीक्षा के लिए प्रस्तुत किए गए प्रत्येक विषय में दिए गए व्याख्यानों में कम से कम 75 प्रतिशत उपस्थिति दर्ज करनी होगी;
>
> (ii) प्रत्येक विषय में, यथास्थिति, मूट कोर्ट्स की मार्गदर्शन सत्रों कक्षाओं तथा प्रायोगिक कक्षाओं में कम से कम 75 प्रतिशत उपस्थिति दर्ज करनी होगी;
>
> (iii) आई.ए., आई.एस.सी., आई.कॉम., बी.ए., बी.एस.सी. तथा बी.कॉम. परीक्षाओं के मामले में, दो वर्षों के भीतर प्रत्येक विषय की तीन आवधिक परीक्षाओं के कुल अंकों में से कम से कम 25 प्रतिशत अंक प्राप्त करने होंगे, इस शर्त के अधीन कि अभ्यर्थी प्रायोगिक परीक्षा के लिए निर्धारित अंकों में से कम से कम 20 प्रतिशत अंक प्राप्त करे।"

उक्त पुराने विनियमों की धारा 5 इस प्रकार है—

"(1) किसी भी छात्र को आई.ए., आई.एस.सी., आई.कॉम., बी.ए., बी.एस.सी. तथा बी.कॉम. परीक्षाओं के लिए किसी भी विषय में नियमित अध्ययन-पाठ्यक्रम पूर्ण किया हुआ नहीं माना जाएगा, जब तक कि उसने इस अध्याय के विनियम 1 की धारा 7 में निर्धारित शर्तों को पूरा न किया हो; और इन परीक्षाओं के अतिरिक्त अन्य परीक्षाओं के लिए, जब तक कि उसने उस विषय में—जिसमें वह एक या अधिक ऐसे महाविद्यालयों या विश्वविद्यालय विभागों में नामांकित हो—यथास्थिति, दिए गए व्याख्यानों, मार्गदर्शन सत्रों तथा प्रायोगिक कार्यों में कम से कम 75 प्रतिशत उपस्थिति दर्ज न की हो, तथा पाठ्यक्रम के उस भाग पर समुचित ध्यान न दिया हो जो मार्गदर्शन सत्रों शिक्षण या प्रायोगिक कार्य से संबंधित है।"

"(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्रतिशत की गणना निर्धारित सत्र के दौरान दिए गए व्याख्यानों की कुल संख्या के आधार पर की जाएगी।"

यह ध्यान देने योग्य है कि पुराने विनियमों के विनियम 1(7) को विनियम 5 के साथ पढ़ने पर स्थिति यह थी कि विनियम 5(1) के प्रथम भाग में उल्लिखित परीक्षाओं के संबंध में 75 प्रतिशत उपस्थिति की आवश्यकता को स्पष्ट रूप से अलग-अलग रूप में—व्याख्यानों, मार्गदर्शन सत्रों कक्षाओं, मूट कोर्ट्स तथा प्रायोगिक कक्षाओं के संदर्भ में, जैसा भी मामला हो—निर्धारित किया गया था। विनियम 1 की धारा 7 की उपधाराएँ (i) और (ii) इस संदर्भ में पूर्णतः स्पष्ट और निर्विवाद हैं। किंतु विनियम 5(1) के उत्तरार्द्ध भाग के अंतर्गत आने वाली अन्य परीक्षाओं के संबंध में स्थिति यह थी कि विनियम 1(7) उन पर लागू नहीं किया गया था, बल्कि वह केवल प्रथम भाग में उल्लिखित परीक्षाओं पर ही लागू था; और इसलिए विनियम 5(1) ने सुविधा की दृष्टि से व्याख्यानों, मार्गदर्शन सत्रों तथा प्रायोगिक कार्यों को एक साथ रखकर 75 प्रतिशत उपस्थिति की आवश्यकता को संक्षेप में निर्धारित कर दिया। संदर्भ से स्पष्ट है कि इस उत्तरवर्ती श्रेणी की परीक्षाओं के लिए निर्धारित 75 प्रतिशत उपस्थिति की शर्त—व्याख्यानों, मार्गदर्शन सत्रों तथा प्रायोगिक कार्यों के संदर्भ में—किसी भिन्न प्रकृति की नहीं थी। इस शर्त को भी, यथास्थिति, प्रत्येक में से किसी एक—अर्थात् व्याख्यानों, मार्गदर्शन सत्रों या प्रायोगिक कार्यों—के संदर्भ में पूरा किया जाना था। विनियम 1(7) की उपधाराएँ (i) और (ii) को पुनः दोहराने के स्थान पर, विनियम 5(1) ने केवल सुविधा के लिए उन दोनों उपधाराओं को एक ही उपधारा में समाहित कर दिया। अतः हमारा मत है कि उच्च न्यायालय ने यह मानने में त्रुटि की कि पुराने विनियमों के अंतर्गत इस उत्तरवर्ती श्रेणी की परीक्षाओं के संबंध में 75 प्रतिशत उपस्थिति की आवश्यकता किसी भी

प्रकार से उन परीक्षाओं के संबंध में निर्धारित उसी आवश्यकता से भिन्न थी, जिनका उल्लेख उक्त विनियम के प्रथम भाग में किया गया है।

किन्तु तर्क के लिए यह मान भी लिया जाए कि उक्त आवश्यकता उत्तरवर्ती श्रेणी की परीक्षाओं के संबंध में भिन्न थी, तब भी यह समझना आसान नहीं है कि उससे यह निष्कर्ष कैसे समर्थित होता है कि वर्तमान विनियम 4 ने विनियम 5(1) में उल्लिखित उसी उत्तरवर्ती श्रेणी की परीक्षाओं के अनुरूप सभी परीक्षाओं को समाहित कर लिया है, यह निर्धारित करते हुए कि 75 प्रतिशत उपस्थिति की शर्त व्याख्यानों, मार्गदर्शन सत्रों और प्रायोगिक कार्यों के संदर्भ में अलग-अलग नहीं, बल्कि तीनों को सामूहिक रूप से लेकर पूरी की जानी चाहिए। हमारे मत में, संदर्भ को ध्यान में रखते हुए, यह अधिक युक्तिसंगत होगा कि वर्तमान विनियम सभी परीक्षाओं के संबंध में 75 प्रतिशत उपस्थिति की आवश्यकता को व्याख्यानों, मार्गदर्शन सत्रों तथा/अथवा प्रायोगिक कार्यों के संदर्भ में अलग-अलग रूप से निर्धारित करता है।

श्री बसुदेव प्रसाद ने परीक्षा विनियमों के अध्याय VI में निहित विनियम 9 पर भरोसा करने का प्रयास किया है, जो कला संकाय की तीन वर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम की बी.ए. भाग-I परीक्षा से संबंधित है। उक्त विनियम यह प्रावधान करता है कि डिग्री भाग-I परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए अभ्यर्थी को प्रत्येक विषय में कुल अंकों का कम से कम 30 प्रतिशत तथा समग्र रूप से 33 प्रतिशत अंक प्राप्त करने होंगे। उनका तर्क है कि विनियम 9 का यह प्रावधान उत्तरदाता के पक्ष का समर्थन करता है कि विनियम 4 का उद्देश्य नियमित अध्ययन-पाठ्यक्रम को इस प्रकार निर्धारित करना नहीं हो सकता था कि 75 प्रतिशत उपस्थिति की शर्त व्याख्यानों, मार्गदर्शन सत्रों तथा/अथवा प्रायोगिक कार्यों को समग्र रूप से और संयुक्त रूप में लेकर पूरी की जाए। हमें यह समझ में नहीं आता कि परीक्षाओं से संबंधित विनियम 9 द्वारा किया गया यह प्रावधान विनियम 4 में प्रयुक्त शब्दों की व्याख्या में किस प्रकार प्रासंगिक हो सकता है। अतः हम यह स्वीकार नहीं करते कि परीक्षा विनियमों का विनियम 9 उत्तरदाता के मामले का समर्थन करता है।

यह प्रतीत होता है कि वर्तमान मामले में उत्तरदाता द्वारा रिट याचिका दायर किए जाने से पूर्व, उसके पिता श्री सी. के. रमन, आई.सी.एस., ने 11 अप्रैल, 1965 को अपीलकर्ता संख्या 1 को एक लंबा पत्र लिखा था, जिसमें उन्होंने अपने पुत्र के मामले में अपने निर्णय पर पुनर्विचार करने और उसे संबंधित विश्वविद्यालय परीक्षा में बैठने की अनुमति देने का

आग्रह किया था। उक्त पत्र में, जो स्वर में तर्कपूर्ण है, उत्तरदाता के पिता ने अपीलकर्ता संख्या 1 को आक्षेपित नोटिस निरस्त करने के लिए मनाने का प्रयास किया प्रतीत होता है। अपीलकर्ता संख्या 1 ने तत्काल उक्त पत्र का उत्तर दिया और उत्तरदाता के पिता को सूचित किया कि उसने उत्तरदाता का मामला कुल उपस्थिति के विवरण सहित, आवश्यक कार्रवाई के लिए, परिस्थितियों में उसे जो उचित लगा, उस अनुसार, कुलपति के समक्ष भेज दिया है। अपीलकर्ता संख्या 1 ने आगे यह भी जोड़ा कि कुलपति ने यह निर्णय लिया है कि उत्तरदाता के पिता द्वारा किया गया अनुरोध स्वीकार करना संभव नहीं है, क्योंकि विश्वविद्यालय के विनियम इसकी अनुमति नहीं देते।

यह स्मरण किया जा सकता है कि आक्षेपित सूचना 29 मार्च, 1965 को प्रकाशित की गई थी, और उत्तरदाता के पिता द्वारा 11 अप्रैल को लिखा गया पत्र अपीलकर्ता संख्या 1 द्वारा 12 अप्रैल को उत्तरित किया गया था। फिर भी, उत्तरदाता ने अपनी रिट याचिका रविवार, 18 अप्रैल तक दाख़िल नहीं की; और जैसा कि हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं, रिट याचिका रविवार की रात मुख्य न्यायाधीश के आवास पर प्रस्तुत की गई और उसी रात उसकी स्वीकृति तथा अंतरिम आदेशों के लिए सुनवाई हुई। यह सत्य है कि यदि न्याय की मांग हो तो न्यायालय को रविवार को भी याचिका स्वीकार करनी चाहिए; किंतु इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि याचिका का दाख़िला रविवार (18-4-1965) की रात तक स्थगित कर दिया गया था, तथा अन्य प्रासंगिक परिस्थितियाँ जिनका हमने पहले ही उल्लेख किया है, हमारा विचार है कि यदि उच्च न्यायालय ने उसी रात कोई अंतरिम आदेश पारित न किया होता, तो यह अधिक उपयुक्त होता। यह विशेष रूप से रेखांकित करना आवश्यक नहीं है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत शैक्षणिक संस्थानों के अधिकारियों द्वारा पारित आदेशों से संबंधित मामलों में उच्च न्यायालय को सामान्यतः *एकपक्षीय* अंतरिम आदेश पारित करने में अत्यंत सावधानी बरतनी चाहिए, क्योंकि शैक्षणिक अधिकारियों के अधिकार-क्षेत्र में आने वाले विषय सामान्यतः उनके निर्णय पर ही छोड़े जाने चाहिए, और उच्च न्यायालय को केवल तभी हस्तक्षेप करना चाहिए जब उसे यह प्रतीत हो कि न्याय के हित में ऐसा करना आवश्यक है। गुण-दोष के आधार पर भी हमारा मत है कि जहाँ प्रश्न विश्वविद्यालय की अकादमिक परिषद द्वारा बनाए गए किसी विनियम की व्याख्या से संबंधित हो, और यह स्पष्ट हो कि संबंधित विनियम दो संभावित व्याख्याओं के योग्य है, वहाँ उच्च न्यायालय को सामान्यतः *उत्प्रेषण* की रिट जारी करने में संकोच करना चाहिए; क्योंकि ऐसे मामलों में शैक्षणिक प्राधिकारियों द्वारा की गई व्याख्या को पलटना सामान्यतः उपयुक्त नहीं होता, यदि

वह उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार की गई वैकल्पिक व्याख्या की तुलना में कम तर्कसंगत न हो। *उत्प्रेषण* की रिट जारी करने के संबंध में उच्च न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र की सीमाएँ सुविख्यात हैं और समग्र रूप से यह वांछनीय है कि ऐसे मामलों में रिट अधिकार-क्षेत्र का प्रयोग करते समय न्यायिक निर्णयों द्वारा निर्धारित इन सीमाओं को सदैव ध्यान में रखा जाए।

अतः परिणामस्वरूप, यह अपील स्वीकार की जाती है, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को निरस्त किया जाता है और उत्तरदाता द्वारा दायर रिट याचिका खारिज की जाती है। इस प्रकरण की असामान्य परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हम निर्देश देते हैं कि उत्तरदाता अपीलकर्ताओं के समस्त वाद-व्यय का भुगतान करेगा।

अपील स्वीकार की गई।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।